
प्रवचन नं. २६४, गाथा- १८७-१९२, श्लोक-१२७-१२८
बुधवार, अषाढ शुक्ल ३

दिनाङ्क २७-०६-१९७९,

(समयसार), १२७ कलश हो गया, उसका भावार्थ । भावार्थ की दो लाईन हो गयी है । धारावाही ज्ञान.. यहाँ से शुरु (होता) है । है ? १२७ कलश का अर्थ हो गया है, भावार्थ दो लाईन हो गयी है ।

मुमुक्षु : दो लाईन लेनी है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : लेनी है ? ले ली गयी है, ले ली गयी है । कल ले ली गयी है ।

धारावाही ज्ञान का अर्थ है प्रवाहरूपज्ञान.. यहाँ 'संवर अधिकार' है । जहाँ

अन्तर राग से आत्मा भिन्न पड़ा, उसकी शुद्ध परिणमन की एक धारावाही धारा चले। शुद्ध और भले थोड़ा अशुद्ध हो परन्तु शुद्ध धारा तो कायम चलती है। पवित्र, वह संवर है। अविच्छिन्न धारा-ज्ञानानन्दस्वभाव की जो परिणति है, वह अविच्छिन्न धारा है, धारा टूटती नहीं। आहाहा!

वह दो प्रकार से कहा जाता है.. वह दो प्रकार से कहा जाता है। क्या? धारावाही ज्ञान प्रवाहरूप अविच्छिन्न दो प्रकार से कहा जाता है। एक तो, जिसमें बीच में मिथ्याज्ञान न आवे.. मिथ्यादृष्टिपना न आवे और सम्यग्दर्शनपना हो, उपयोग भले पर में हो। आहाहा! ऐसा सम्यक्ज्ञान धारावाही ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान हुआ, राग से भिन्न पड़कर भगवान आत्मा (पृथक् पड़ा) अर्थात् वह ज्ञान धारावाही अखण्ड रहता है। मिथ्याज्ञान न आवे, तब तक अखण्ड ज्ञानधारा कहते हैं।

इस अपेक्षा से ज्ञान की धारावाहिकता.. कहा न? अब दूसरी बात। एक ही ज्ञेय में.. एक बात कही। क्या एक बात कही?—कि आत्मा राग से भिन्न है, उसका भान हुआ और भले उसे राग आवे, परन्तु जो शुद्धता प्रगटी है, वह तो एक धारावाही होती है। मिथ्याज्ञान न आवे, तब तक धारावाही ज्ञान है।

दूसरी बात—एक ही ज्ञेय में उपयोग के उपयुक्त रहने की अपेक्षा से.. एक ज्ञायकस्वरूप को ज्ञेय करके उसमें ही स्थिर रहना, उपयोग के उपयुक्त रहने की अपेक्षा से ज्ञान की धारावाहिकता.. उपयोग का धारावाहीपना। उसमें उपयोग नहीं था। किसी समय आता, परन्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, इतना तो भेदज्ञान सदा होता है। दूसरा यह। इसमें उपयोग रहने से ज्ञान का धारावाहिकपना कहने में आता है। जब तक आत्मा अपने ध्यान में ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञान के भेद को भूलकर एक उपयोग में उपयोग पड़ा हो, उसे भी अन्तर्मुहूर्त तक धारावाही कहते हैं। अन्तर्मुहूर्त तक।

अर्थात् जहाँ तक उपयोग एक ज्ञेय में उपयुक्त रहता है, वहाँ तक धारावाही ज्ञान कहलाता है;.. आहाहा! धारावाही अर्थात् एक धारा से सरीखा चलता हुआ। एक सम्यग्दर्शन होने पर मिथ्यात्व न आवे, तब तक सम्यग्दर्शन की धारा चले, एक वह प्रकार; और एक तो इस उपयोग को लागू पड़ता है। यह उपयोग अन्तर्मुहूर्त रहे, अधिक नहीं। उस

उपयोग को भी अन्तर धारावाही इतने काल में कहते हैं। वहाँ तक धारावाही ज्ञान कहलाता है;..

इसकी स्थिति (छद्मस्थ के) अन्तर्मुहूर्त ही है,.. छद्मस्थ को तो उपयोग अन्तर्मुहूर्त रहने का है। वहाँ तक धारावाही ज्ञान कहलाता है;.. तत्पश्चात् वह खण्डित होती है। उपयोग अन्दर न रह सके, तब वहाँ से बाहर आ जाता है। इन दो अर्थों में से जहाँ जैसी.. कथन शैली हो, वहाँ वैसा अर्थ समझना चाहिए। अविरतसम्यक्दृष्टि.. चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में, छठे गुणस्थान में। इन्हें ऐसा लेना कि दो अर्थों में से जहाँ जैसी विवक्षा हो, वहाँ वैसा अर्थ समझना चाहिए। अविरतसम्यक्दृष्टि इत्यादि नीचे के गुणस्थानवाले जीवों के मुख्यतया पहली अपेक्षा लागू होगी,.. कौन सी ? चौथे, पाँचवें, छठे में धारावाही सम्यग्दर्शन हुआ, वह लागू पड़ता है। उपयोग नहीं। उपयोग किसी समय होता है। इसलिए वह धारावाही उपयोग की अपेक्षा से नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, वह धारावाही कायम रहे, इस अपेक्षा से धारावाही कहा जाता है। चौथे, पाँचवें, छठवें में... आहाहा!

श्रेणी चढ़नेवाले जीव के मुख्यतया दूसरी अपेक्षा लागू होगी.. मुख्यरूप से। वैसे तो उसे अबुद्धिपूर्वक राग है, परन्तु उसे न गिने, इसलिए मुख्यरूप से शुद्ध उपयोग में एकाग्र हो। श्रेणी चढ़नेवाला अन्दर स्थिरता करे। आठवें गुणस्थान से धारा स्थिर होती है, (वह) स्थिर होने पर जीव के मुख्यतया दूसरी अपेक्षा लागू होगी.. उपयोग वहाँ से निकले नहीं, उपयोग वहाँ रहे, इसकी अपेक्षा से वहाँ धारावाही उपयोग कहा जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! धारावाही ज्ञान और यह सब क्या होगा ? पैसे की धारावाही से कमाये नहीं।

मुमुक्षु : पैसे की धारावाही अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिदिन २५-५०-१००-२००-५०० कमाये। आहाहा !

यहाँ हमारे पालेज में दुकान थी न ? तीन भाई इकट्ठे थे। हमेशा ७००-८०० की आमदनी। दिन की, हों ! एक दिन के ७००-८०० धारावाही आवे। ग्राहक ऐसे आवे। पाप की धारा !

यह तो धर्म की धारा की बात चलती है। धर्म की धारा के दो प्रकार—एक उपयोगरूप धारा रहे। वह तो छद्मस्थ को अन्तर्मुहूर्त रहती है, पश्चात् च्युत हो जाती है। आठवें गुणस्थान से उपयोग चले, वह च्युत नहीं होता। वह उपयोग होकर वापस श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान प्राप्त करता है और नीचे चौथे, पाँचवें, छठे (गुणस्थान में) यह धारावाही ज्ञान जो निर्मल प्रगट हुआ है, वह धारावाही (ज्ञान है)। उसे उपयोग भले राग में जाए, पर में जाए (परन्तु) अन्दर सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुआ, वह कहीं च्युत नहीं होता। आहाहा!

ऐसे सब बोल धारना। किसलिए धारना ऐसे बोल? उसे समझाते हैं। भाई! वास्तव में तो तेरा स्वरूप है, वह नित्यानन्द प्रभु, उसके ऊपर उपयोग गया, लगा। बस! फिर भले थोड़ा च्युत हो जाए परन्तु वह उघाड़ हुआ और दर्शन हुआ, वह तो सदा रहेगा। उपयोग की अपेक्षा से दो। निचले गुणस्थानवाले को उपयोग आवे परन्तु अन्तर्मुहूर्त रहे। तुरन्त च्युत हो जाए और आठवें गुणस्थान से उपयोग आवे, (वह) एक धारावाही उपयोग होकर केवलज्ञान प्राप्त करे। समझ में आया? आहाहा! ऐसा है।

गाथा-१८७-१८९

केन प्रकारेण सम्बरो भवतीति चेत् -

अप्पाण-मप्पणा रुंधिऊण दोपुण्ण-पाव-जोगेसु ।
दंसण-णाणम्हि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि ॥१८७॥
जो सब्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा ।
ण वि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥१८८॥
अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अण्णमओ ।
लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥१८९॥

आत्मान-मात्मना रुन्ध्वा द्विपुण्य-पाप-योगयोः ।
दर्शन-ज्ञाने स्थितः इच्छाविरतश्चान्यस्मिन् ॥१८७॥
यः सर्व-सङ्ग-मुक्तो ध्यायत्यात्मान-मात्मनात्मा ।
नापि कर्म नोकर्म चेतयिता चिन्तयत्येकत्वम् ॥१८८॥
आत्मानं ध्यायन् दर्शन-ज्ञान-मयोऽनन्यमयः ।
लभतेऽचिरेणात्मान-मेव स कर्म-प्रविमुक्तम् ॥१८९॥

यो हि नाम रागद्वेषमोहमूले शुभाशुभयोगे वर्तमानं दृढतरभेदविज्ञानावष्टम्भेन आत्मानं आत्मनैवात्यंतं रुन्ध्वा शुद्धदर्शनज्ञानात्मन्यात्मद्रव्ये सुष्ठु प्रतिष्ठितं कृत्वा समस्तपरद्रव्येच्छापरिहारेण समस्तसंगविमुक्तो भूत्वा नित्यमेवातिनिष्प्रकंपः सन् मनागपि कर्मनोकर्मणोरसंस्पर्शेन आत्मीय-मात्मानमेवात्मना ध्यायन् स्वयं सहजचेतयितृत्वादेकत्वमेव चेतयते, स खल्वेकत्वचेतनेना-त्यंतविविक्तं चैतन्यचमत्कारमात्रमात्मानं ध्यायन्, शुद्धदर्शनज्ञानमयमात्मद्रव्यमवाप्तः, शुद्धात्मो-पलंभे सति समस्तपरद्रव्यमयत्वमतिक्रांतः सन्, अचिरेणैव सकलकर्मविमुक्तमात्मानमवाप्नोति ।

एष संवरप्रकारः ॥१८७-१८९॥

अब प्रश्न करता है कि संवर किस प्रकार से होता है? इसका उत्तर कहते हैं:-

शुभ अशुभ से जो रोककर निज आत्म को आत्मा हि से।
दर्शन अवरु ज्ञानहि ठहर, परद्रव्यइच्छा परिहरे॥१८७॥
जो सर्वसंगविमुक्त, ध्यावे आत्म से आत्मा हि को।
नहिं कर्म अरु नोकर्म, चेतक चेतता एकत्व को॥१८८॥
वह आत्म ध्याता, ज्ञानदर्शनमय, अनन्यमयी हुआ।
बस अल्प काल जु कर्म से परिमोक्ष पावे आत्म का॥१८९॥

गाथार्थ : [आत्मानम्] आत्मा को [आत्मना] आत्मा के द्वारा [द्विपुण्यपापयोगयोः] दो पुण्य-पापरूपी शुभाशुभयोगों से [रुन्ध्वा] रोककर [दर्शनज्ञाने] दर्शनज्ञान में [स्थितः] स्थित होता हुआ [च] और [अन्यस्मिन्] अन्य (वस्तु) की [इच्छाविरतः] इच्छा से विरत होता हुआ, [यः आत्मा] जो आत्मा, [सर्वसंगमुक्तः] (इच्छारहित होने से) सर्व संग से रहित होता हुआ, [आत्मानम्] (अपने) आत्मा को [आत्मना] आत्मा के द्वारा [ध्यायति] ध्याता है, और [कर्म नोकर्म] कर्म तथा नोकर्म को [न अपि] नहीं ध्याता, एवं [चेतयिता] (स्वयं) *चेतयिता (होने से) [एकत्वम्] एकत्व को ही [चिन्तयति] चिन्तवन करता है-अनुभव करता है, [सः] वह (आत्मा), [आत्मानं ध्यायन्] आत्मा को ध्याता हुआ, [दर्शनज्ञानमयः] दर्शन-ज्ञानमय [अनन्यमयः] और अनन्यमय होता हुआ [अचिरेण एव] अल्प काल में ही [कर्मप्रविमुक्तम्] कर्मों से रहित [आत्मानम्] आत्मा को [लभते] प्राप्त करता है।

टीका : रागद्वेषमोह जिसका मूल है, ऐसे शुभाशुभ योग में प्रवर्तमान जो जीव दृढतर भेदविज्ञान के आलम्बन से आत्मा को आत्मा के द्वारा ही अत्यन्त रोककर, शुद्धदर्शन-ज्ञानरूप आत्मद्रव्य में भलीभाँति प्रतिष्ठित (स्थिर) करके, समस्त परद्रव्यों की इच्छा के त्याग से सर्व संग से रहित होकर, निरन्तर अति निष्कम्प वर्तता हुआ, कर्म-नोकर्म का किञ्चित्मात्र भी स्पर्श किये बिना अपने आत्मा को ही आत्मा के द्वारा ध्याता हुआ, स्वयं को सहज चेतयितापन होने से एकत्व का ही चेतता (अनुभव करता) है (ज्ञानचेतनारूप रहता है), वह जीव वास्तव में, एकत्व-चेतन द्वारा अर्थात् एकत्व के अनुभवन द्वारा

* चेतयिता=ज्ञातादृष्टा।

(परद्रव्य से) अत्यन्त भिन्न चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा को ध्याता हुआ, शुद्धदर्शनज्ञानमय आत्मद्रव्य को प्राप्त होता हुआ, शुद्ध आत्मा की उपलब्धि (प्राप्ति) होने पर समस्त परद्रव्यमयता से अतिक्रान्त होता हुआ, अल्प काल में ही सर्व कर्मों से रहित आत्मा को प्राप्त करता है। यह संवर का प्रकार (विधि) है।

भावार्थ : जो जीव पहले तो रागद्वेषमोह के साथ मिले हुए मनवचनकाय के शुभाशुभ योगों से अपने आत्मा को भेदज्ञान के बल से चलायमान नहीं होने से, और फिर उसी को शुद्धदर्शनज्ञानमय आत्मस्वरूप में निश्चल करे तथा समस्त बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से रहित होकर कर्म-नोकर्म से भिन्न अपने स्वरूप में एकाग्र होकर उसी का ही अनुभव किया करे अर्थात् उसी के ध्यान में रहे, वह जीव आत्मा का ध्यान करने से दर्शनज्ञानमय होता हुआ और परद्रव्यमयता का उल्लंघन करता हुआ अल्प काल में ही समस्त कर्मों से मुक्त हो जाता है। यह संवर होने की रीति है।

गाथा - १८७-१८९ पर प्रवचन

अब प्रश्न करता है कि संवर किस प्रकार से होता है? इसका उत्तर कहते हैं:- लो, यह प्रश्न तो बराबर है। संवर अर्थात् धर्म की पहली शुद्धि। निर्जरा, वह तो (शुद्धि की) वृद्धि है। अनादि से अशुद्धि है। पर्याय में अनादि से राग की अशुद्धि है। आस्रव है, भावास्रव है। अब शिष्य प्रश्न करता है कि अब संवर किस प्रकार से होता है? उसका प्रकार किस तरह है? उसका उत्तर (कहते हैं)।

अप्पाण-मप्पणा रुंधिऊण दोपुण्ण-पाव-जोगेसु ।

दंसण-णाणम्हि ठिदो इच्छाविरदो य अण्णम्हि ॥१८७॥

जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा ।

ण वि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥१८८॥

अप्पाणं झायंतो दंसणणाणमओ अण्णमओ ।

लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्मपविमुक्कं ॥१८९॥

शुभ अशुभ से जो रोककर निज आत्म को आत्मा हि से।
 दर्शन अवरु ज्ञानहि ठहर, परद्रव्यइच्छा परिहरे॥१८७॥
 जो सर्वसंगविमुक्त, ध्यावे आत्म से आत्मा हि को।
 नहिं कर्म अरु नोकर्म, चेतक चेतता एकत्व को॥१८८॥
 वह आत्म ध्याता, ज्ञानदर्शनमय, अनन्यमयी हुआ।
 बस अल्प काल जु कर्म से परिमोक्ष पावे आत्म का॥१८९॥

टीका : जो जीव, रागद्वेषमोह जिसका मूल है, ऐसे शुभाशुभ.. भाव। क्या कहा ? कि शुभाशुभभाव का मूल राग-द्वेष और मोह है। आहाहा ! यहाँ तो मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वह शुभाशुभभाव की उत्पत्ति का मूल है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? राग-द्वेष और मोह—मिथ्यात्व जिसका मूल है। ऐसे शुभाशुभ योग में प्रवर्तमान आत्मा को.. आहाहा ! दृढ़तर भेदविज्ञान के आलम्बन से.. अब सुलटा कहते हैं। इस प्रकार है। शुभाशुभभाव मेरे, ऐसा मिथ्यात्वभाव और उसके योग्य राग-द्वेष हैं, उन सब शुभाशुभभाव का मूल राग-द्वेष-मोह है। उसे दृढ़तर (अति दृढ़) अकेला दृढ़ लिया नहीं, वैसे दृढ़तम नहीं लिया। दृढ़तम अन्तिम है। दृढ़तर बीच का बोल लिया। दृढ़, दृढ़तर और दृढ़तम। दृढ़तम, यह उत्कृष्ट बोल है। आहा !

आत्मा को दृढ़तर भेदविज्ञान के आलम्बन से.. लो। भेदविज्ञान के आलम्बन से आत्मा के द्वारा ही अत्यन्त रोककर,.. आहाहा ! शुद्धस्वरूप-सन्मुख में एकाग्र होकर राग और द्वेष और मोह को रोककर शुद्धदर्शन-ज्ञानरूप आत्मद्रव्य में.. अब आत्मा कैसा है, (यह) पहले सिद्ध किया। आत्मा शुद्ध दर्शन-ज्ञानरूप आत्मा है। आत्मा अर्थात् शुद्ध ज्ञान-दर्शनरूप, वह आत्मा। दया, दान, व्रतादि के विकल्प हैं, वे कहीं आत्मा नहीं है, वे अनात्मा है। आहाहा !

भेदविज्ञान के आलम्बन से आत्मा के द्वारा ही अत्यन्त रोककर,.. आत्मा द्वारा ही अत्यन्त रोककर। अपने आप रुके, ऐसा नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा ! अपना भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप का आश्रय लेकर, उसके अवलम्बन से दृढ़रूप से राग-द्वेष-मोह को रोकता है। रोकता है, यह शब्द है, यह तो उपदेश में कहा जाता है। रुक जाते हैं।

शब्द तो आवे, उपदेश शैली है न! आहाहा! अत्यन्त रोककर, शुद्धदर्शन-ज्ञानरूप आत्मद्रव्य.. आत्मा किसे कहते हैं? कहते हैं प्रभु, तो शुद्ध दर्शन-ज्ञान—ज्ञाता-दृष्टा वह आत्मा। आहाहा! पूरा लोकालोक हो, राग से लेकर वे सब ज्ञान के, दर्शन के, ज्ञेय और दृश्य हैं। आहाहा! भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञानरूप है, ज्ञान और दर्शनस्वरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : शुद्ध अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पवित्र। शुद्ध का अर्थ (पवित्र)। शुद्ध है, अशुद्धता नहीं। शुभ और अशुभभाव अशुद्ध हैं। शुभ और अशुभभाव अशुद्ध हैं। उस अशुद्ध को शुद्धभाव से रोककर... आहाहा! ऐसा संवर। ऐसा करे, तब धर्म होता है। यहाँ अता-पता हाथ नहीं आवे। आहाहा!

आचार्यों के तो हृदय-अभिप्राय तो बहुत जोरदार है। वह तो दृढ़तर अभ्यास से रोककर स्वरूप की प्राप्ति पूर्ण कर लेना। आहाहा! शुद्धदर्शन-ज्ञानरूप आत्मद्रव्य में भलीभाँति प्रतिष्ठित.. भाषा है? अकेला प्रतिष्ठित शब्द प्रयोग नहीं किया। भलीभाँति स्थिर होकर। भलीभाँति अन्दर आनन्द में (स्थिर होकर)। आहाहा! प्रभु दर्शन और ज्ञान और आनन्दरूप है, उसमें भलीभाँति स्थिर होकर। आहाहा!

समस्त परद्रव्यों की इच्छा के त्याग से.. अपने आत्मा के सिवाय जितने पर-आत्मायें और पर-शरीर, परद्रव्य हैं, उन सबके प्रति इच्छा के त्याग से। ऐसा तो बाबा होवे तो हो, ऐसा कहते हैं। (कोई) ऐसा कहता था। बाबा ही है, सुन न! जहाँ हो, वहाँ तू पर से तो रहित ही है। वास्तव में तो अन्दर इच्छा से भी रहित ही तेरा स्वरूप है। आहाहा! यह तो पहले कहा। शुद्ध दर्शन-ज्ञानरूप ही तू आत्मा है। आहाहा! इच्छा तुझमें है ही नहीं, फिर करना और रोकना, यह कहाँ रहा? आहाहा! परन्तु स्वरूप में स्थिर हो, तब इच्छा उत्पन्न नहीं होती; इसलिए उसे रोकता है, ऐसा कहने में आता है। क्योंकि संवर है सही न! (इच्छा का) निरोध करता है, ऐसा।

परद्रव्यों की इच्छा के त्याग से.. समस्त परद्रव्य। देव-गुरु-शास्त्र (भी) परद्रव्य है। त्याग से सर्व संग से रहित होकर,.. आहाहा! अन्तर में सर्व संग से रहित होकर, परद्रव्य से तो इच्छा निरोध करके, अन्दर जो राग है, वहाँ से संग छोड़कर... आहाहा! निरन्तर अति निष्कम्प वर्तता हुआ,.. आहाहा! निरन्तर अति निष्कम्प वर्तता हुआ,..

भाषा देखो ! निरन्तर अति निष्कम्प वर्तता हुआ, वापस । अति निष्कम्प । आहाहा ! कर्म-नोकर्म का किञ्चित्मात्र भी स्पर्श किये बिना.. कर्म और शरीरादि, वाणी आदि किसी को स्पर्श किये बिना अपने आत्मा को ही.. अपना भगवान दर्शन-ज्ञानरूप आत्मा । ऐसे आत्मा को ही आत्मा के द्वारा.. अपने आत्मा को 'ही'.. आहाहा ! जो शुद्ध दर्शन-ज्ञानरूप है उसे । आत्मा द्वारा, उस शुद्ध दर्शनपर्याय द्वारा । आहाहा !

स्वयं को सहज चेतयितापन होने से.. इकट्ठा किया । पहले दर्शन-ज्ञान कहा था न ? दर्शन-ज्ञानरूप वहाँ (कहा था) । अब इकट्ठा लिया । स्वयं को सहज चेतयितापन होने से.. चेतयिता—वह तो जानने-देखनेवाला ही है, बस ! जगत को चेतनेवाला है । जगत को बनानेवाला नहीं, जगत में मिलनेवाला नहीं, जगत से कुछ लेना नहीं, जगत से निराला, चेतनेवाला जीव भगवान है । आहाहा ! पहले दर्शन-ज्ञानरूप आत्मा कहा था न ? यहाँ एक शब्द प्रयोग किया । अपने को सहज स्वयं को सहज चेतयितापन होने से एकत्व का ही चेतता.. आहाहा ! ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञान को चेतता है—अनुभवता है । अकेले ज्ञान को अनुभवता है । आहाहा ! यह सब बात बड़ी, परन्तु पहले क्या करना ? पहले यही करना । पहले ही यह है । १७ गाथा में कहा नहीं ? १७ गाथा में कहा, पहले क्या ? पहले आत्मा को जानना । पहले नय, निक्षेप से जानना—ऐसा कुछ कहा नहीं । १७ गाथा । भगवान आत्मा, जैसा तू भूला है, उसे उस प्रकार से पहले जान । आहाहा !

जिस प्रकार तूने तुझे जानने की भूल की है, जानने की पद्धति छोड़कर (भूल की है) उस भूल को छोड़कर एकाकार हो । आहाहा ! जगत की सब चीजें व्यवहार से ज्ञेय हैं । उनमें कोई ठीक-अठीक या ऐसा कुछ ज्ञेय नहीं है । दो भाग डालना, ऐसा कुछ ज्ञेय में नहीं है । इसलिए चेतयितापने होने से वह एकत्व को ही चेतता है । एकपने को ही जानता है । आहाहा ! पंच परमेष्ठी ठीक, यह व्यापार-धन्धा, स्त्री, पुत्र ठीक, ऐसा भेद उसमें नहीं है । जाननेवाले को जानने में आती हुई चीज में भेद नहीं है । एकरूप सब चीजें ज्ञेयरूप से हैं । आहाहा ! पंच परमेष्ठी को परद्रव्य में डाला है । आहाहा !

चेतता है.. (अर्थात्) अनुभवना, देखना-जानना । (ज्ञानचेतनारूप रहता है),.. क्या कहा ? रागचेतना, कर्मचेतना और कर्मफलचेतना । राग की चेतना-अनुभवना, वह कर्मचेतना है । उसके फल का-दुःख का अनुभव करना, वह कर्मफलचेतना है । यह तो

अनादि से राग का कर्मचेतनापना करता आया है, वह तो संसार है। आहाहा! उस संसारमार्ग में बड़ा अरबोंपति हो तो भी वह राग को ही अनुभव करता है। स्वर्ग के देवता, लो। आहाहा! मिथ्यादृष्टि है, वह तो राग को ही वेदता है, बस! कषाय को वेदता है। आहाहा! उसे छोड़कर। है ?

यहाँ आया, चेतयितापन होने से एकत्व को ही चेतता है (ज्ञानचेतनारूप रहता है), वह जीव वास्तव में, एकत्व-चेतन द्वारा.. अपनी ओर के एकत्व चेतन से। अपनी ओर के जानने-देखने के स्वभाव द्वारा। आहाहा! अर्थात् एकत्व के अनुभवन द्वारा.. एकपने का ही अनुभव। जिसमें कोई विकल्प, दूसरी चीज़ नहीं। आहाहा! ऐसे अनुभव द्वारा। यह क्या पूछते हैं ? उसका उत्तर है। संवर किस प्रकार से होता है ? उस प्रकार की बात चलती है। आहाहा! दुकान का धन्धा या व्यापार पूरे दिन तेईस घण्टे यह ले। एकाध घण्टे सुनने जाए, उसमें ऐरण की चोरी और सुई का दान। धर्म तो एक ओर रहा परन्तु पुण्य भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! मोह ने जगत को मार डाला है। आहाहा!

अकेला चेतन प्रभु, उसे चेतकर—अनुभव करके। आहाहा! (परद्रव्य से) अत्यन्त भिन्न.. अत्यन्त भिन्न; अकेला भिन्न नहीं। आहाहा! अत्यन्त भिन्न चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा को ध्याता हुआ,.. चैतन्य-चमत्कार, चैतन्य-चमत्कार! आहा! जिसे ज्ञान की दशा में अनन्त जानना हो, जिसके दर्शन में अनन्त देखना हो, आहा! ऐसा चैतन्य-चमत्कार। चैतन्य-चमत्कार; दुनिया में चमत्कार होवे तो वह है। दूसरे चमत्कार तो व्यर्थ हैं। आहाहा! शुद्धदर्शनज्ञानमय आत्मद्रव्य को प्राप्त होता हुआ,.. वहाँ से हटकर अन्दर में अनुभव करे, तब तो शुद्ध आत्मा दर्शन-ज्ञानमय अनुभव करे। शुद्ध दर्शन-ज्ञान है, वह आत्मा। पहले कहा था, शुद्ध दर्शन-ज्ञानरूप आत्मा। तीसरी लाईन में कहा था। आहाहा!

चैतन्यचमत्कारमात्र आत्मा को ध्याता हुआ, शुद्धदर्शनज्ञानमय आत्मद्रव्य को प्राप्त होता हुआ,.. आत्मद्रव्य को प्राप्त होता हुआ (कहा है), देखा ? गुण को नहीं, पर्याय को नहीं। आहाहा! परद्रव्य से, इच्छा से हटा, तो स्वद्रव्य में आया, बस! आत्मा को आत्मद्रव्य को प्राप्त होता हुआ,.. लो! आत्मा तो गुण है, उस गुण को प्राप्त हुआ, ऐसा नहीं लिया। आत्मद्रव्य को प्राप्त हुआ, उसमें अनन्त गुण आ गये। आहाहा!

आत्मद्रव्य को प्राप्त होता हुआ, शुद्ध आत्मा की उपलब्धि.. (अर्थात्) अनुभव। शुद्ध आत्मा का अनुभव, वह संवर है। आहाहा! पृष्ठ-पृष्ठ में यह भरा है, तो भी लोग ऐसा (कहते हैं) शुभभाव से धर्म, शुभभाव से धर्म पुकारा करते हैं और (यहाँ का) विरोध करते हैं।

मुमुक्षु : आचार्य ने शुद्ध उपयोग ही कह दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा है या नहीं? आत्मा है या नहीं इस काल में? आहाहा! तीनों काल में है, उसे कोई काल लागू नहीं पड़ता। आहाहा!

सच्चिदानन्द प्रभु, चेतनेवाला दर्शन-ज्ञानरूप वह आत्मद्रव्य, उसे प्राप्त करे। परद्रव्य से दृष्टि छोड़कर उसे प्राप्त करे। है? शुद्ध आत्मा की उपलब्धि (प्राप्ति) होने पर समस्त परद्रव्यमयता से अतिक्रान्त होता हुआ,.. शुद्धस्वरूप की अन्तर्दृष्टि और उपयोग जमता हुआ.. आहाहा! तब परद्रव्यमयता से अतिक्रान्त होता हुआ,.. परद्रव्य से अतिक्रान्त (अर्थात्) पृथक् पड़ा। अल्प काल में ही.. अचिरेण शब्द है न? अचिरेण शब्द है न अन्दर? अचिरेण (मूल गाथा की) अन्तिम लाईन है। लहदि अचिरेण अल्प काल में वह परमात्मा होता है। अचिरेण—आहाहा! अल्प काल में ही... ऐसा है न? अचिरेण ऐसा है। अचिरेण—अल्प काल में ही... इसमें क्रमबद्ध कहाँ रहा? अल्प काल में प्राप्त करता है। वह तो उसकी स्थिति बताते हैं। (जिसे) ऐसा हो, उसे केवल (ज्ञान) प्राप्त करने में लम्बा काल नहीं होता। क्रमबद्ध उसमें ही आ जाता है। आहाहा! उसके क्रम में यह अनुभव करे, उसे क्रम में केवलज्ञान लेने में थोड़ा ही समय होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अल्प काल में ही सर्व कर्मों से रहित आत्मा को प्राप्त करता है। यह संवर का प्रकार (विधि) है। संवर करने की यह पद्धति है। दोनों हाथ जोड़े और यह करो, और... यह पद्धति नहीं, कहते हैं। ये लड़के संवर करने बैठते हैं न! सामायिक (करे इसलिए) पैसा चार आना, आठ आना, रुपया, या कुछ दे, (इसलिए) सब इकट्ठे हों। हो गया संवर, ओहोहो!

यह संवर का प्रकार.. संवर होने की यह पद्धति और प्रकार और यह विधि, संवर होने की विधि है। आहाहा! दुकान का करते हैं, नौकर का करते हैं, स्त्री का करते हैं और संवर करते हैं, ऐसे दो भाग होंगे? जब तक पर का कर्तापना मानता है, भले स्त्री हो या

उसका आत्मा हो या उसका शरीर (हो), उससे ठीक मानता है, यह ठीक है, (ऐसा मानता है), तब तक मिथ्यात्वभाव है।

मुमुक्षु : आत्मा एक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला आत्मा, एक ही आत्मा, उसमें दूसरा कोई है नहीं। आहाहा! गृहस्थाश्रम में क्षायिक समकित प्राप्त करे तो भी मेरे शुद्ध एक दर्शन ज्ञानमय, अपूर्ण भी नहीं। आहाहा! विकार तो नहीं, पर तो नहीं। सम्पूर्ण ज्ञान, दर्शनमय भगवान को प्राप्त करता है, लो!

भावार्थ : जो जीव पहले तो रागद्वेषमोह के साथ मिले हुए मनवचनकाय के शुभाशुभ योगों से.. उसमें (टीका में) कहा था न? रागद्वेषमोह जिसका मूल है, ऐसे शुभाशुभ.. शुभाशुभ में इसका मूल, राग-द्वेष-मोह है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पहले तो रागद्वेषमोह के साथ मिले हुए मनवचनकाय के शुभाशुभ योगों से अपने आत्मा को भेदज्ञान के बल से.. पृथक् करने के बल से। आहाहा! चलायमान नहीं होने से,.. परद्रव्य और परद्रव्य की ओर के झुकाव का राग, उससे भेदज्ञान करने पर चलायमान नहीं होने से,.. आहाहा! ज्ञान का खिंचाव ज्ञान में रहे। राग और परद्रव्य में जाए नहीं। आहाहा! यह संवर की पद्धति है।

और फिर उसी को शुद्धदर्शनज्ञानमय आत्मस्वरूप में निश्चल करे.. अन्दर निश्चल करे। चलायमान न हो, ऐसे स्थिर हो। आहाहा! तथा समस्त बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से रहित होकर.. निर्ग्रन्थ लिया है न? (अर्थात्) मुनि। आहाहा! मुनि ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। शुद्धदर्शनज्ञानमय.. आत्मद्रव्य को प्राप्त होता हुआ शुद्ध आत्मा को अनुभव करके। शुद्ध आत्मा का अनुभव प्राप्त होने पर समस्त परद्रव्य से अतिक्रान्त होता हुआ। परद्रव्य से छूट गया, यह तो आ गया, नहीं? चलायमान नहीं होने से,.. ये भावार्थ में आया।

बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से रहित होकर कर्म-नोकर्म से भिन्न अपने स्वरूप में एकाग्र होकर उसी का ही अनुभव किया करे अर्थात् उसी के ध्यान में रहे,.. आहाहा! सम्यग्दर्शन, वह ध्यान में ही प्राप्त होता है। विकल्प के विचार में नहीं होता, क्योंकि वस्तु स्वयं वीतरागस्वरूप है, इसलिए उसे वीतरागी पर्याय का ध्यान (हो), उसमें ही वह मोक्ष

प्राप्त होता है। आहाहा! (अनुभव किया करे अर्थात्) उसी के ध्यान में रहे, वह जीव आत्मा का ध्यान करने से.. (अर्थात्) आत्मा का ध्यान करने से। आहाहा! दर्शनज्ञानमय होता हुआ और परद्रव्यमयता का उल्लंघन करता हुआ.. आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त जितने द्रव्य, राजपाट, स्त्री, पुत्र, परिवार, पुत्र, पुत्री, पिटारा, माल, इन सबसे छूट गया। सबसे भिन्न ही है, परन्तु इच्छा से जहाँ छूट गया तो सब परद्रव्य से छूट गया। आहाहा! देखो! यह मुनिपने की दशा! आहाहा! परद्रव्यमयता का उल्लंघन करता हुआ अल्प काल में ही समस्त कर्मों से मुक्त हो जाता है। यह संवर होने की रीति है। लो! संवर कैसे हो? कि, ऐसे होता है। आहाहा! उसकी विधि भी कठिन।

मुमुक्षु : भेदविज्ञान से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! इच्छा और परद्रव्य से खाली है (और) तेरे अनन्त गुण से भरपूर है, यह दो बातें। इच्छामात्र से और परद्रव्यमात्र से तू खाली है। आहाहा! और तेरे अनन्त गुणों से पूर्ण भरपूर है। ओहोहो! ऐसा आत्मा का माहात्म्य कैसे आवे? पूरे दिन उलझन में पड़ा (होवे)। इसके बिना इसे जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा, भवभ्रमण नहीं मिटेगा। आहाहा! शुद्ध दर्शन-ज्ञानमय आत्मा को परद्रव्य से भिन्न चेतता, अनुभवता, ध्याता, स्थिर होकर अल्प काल में पूर्ण परमात्मा को प्राप्त करता है। अल्प काल में जैसा आत्मा है, वैसा प्राप्त करता है। आहाहा! पंचम काल के मुनि भी ऐसा कहते हैं। गाथा ऐसी है न! ऐसा नहीं कहते कि अभी मोक्ष नहीं है। ऐसे करते-करते मोक्ष हो, यह है।

यह तो (कितने ही) ऐसा कहते हैं कि अभी शुभोपयोग ही है। अर र! अर्थात् अधर्म ही है। आहाहा! शुभ उपयोग है, वह पुण्य है और पुण्य के अभिलाषी हैं, वे भोग के अभिलाषी हैं। आहाहा! जिन्हें शुभभाव-पुण्य प्रिय लगता है, उसके फलरूप से विषय मिलते हैं, उनके भोगने का वह इच्छुक है। आहाहा! शुभभाव पुण्य है, वह भोग का कारण है। अब यह कहते हैं, पुण्य है, वह भोग का कारण है, वह अभी मिले। आहाहा! दुनिया अन्ध भी चलती है न!

मुमुक्षु : शुभभाव में आत्मा की अभिलाषा रखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : (शुद्धभाव में) अकेली आत्मा की (अभिलाषा) है, शुद्ध

आत्मा । अभिलाषा अर्थात् उसकी ओर का झुकाव, एकाग्रता । अभिलाषा अर्थात् इच्छा, ऐसा नहीं ।

मुमुक्षु : शुभभाव में (आचरण) करे और आत्मा की अभिलाषा...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं । शुद्ध, शुद्ध । शुद्धभाव की अभिलाषा करे । शुभ को तो संसार... संसार... संसार (कहा है) । अरे ! पुण्य को तो यहाँ तक कहा है, जो कोई पुण्य करे, उसे विषय के भोग की इच्छा है । जयसेनाचार्यदेव की टीका में है । जयसेनाचार्यदेव की टीका में (आता है) । जो कोई प्रेम से शुभभाव को करता है, भोग जिसका फल, उनकी (उसे) अभिलाषा है । आहाहा ! अभव्य के लिए भी आया न ? ' भोग निमित्त ' बन्ध अधिकार में, दूसरी जगह है । आहाहा ! शुभभाव, वह पुण्य है और उसके फलरूप से बन्ध है तथा उसके फलरूप से विषय मिलते हैं । इसलिए पुण्य के प्रेमी विषय के भोगने के प्रेमी हैं । आहाहा ! पुण्य तो ज्ञानी को भी आता है, परन्तु प्रेम नहीं है । आहाहा ! रुचि और सुखबुद्धि नहीं है । अज्ञानी को तो उसमें सुखबुद्धि है । आहाहा ! दो-तीन जगह आयेगा । शुभभाव भोग का कारण है, शुभभाव के फल में इसे भोग मिलते हैं । बहुत जगह शुभभाव का (आता है) । आहाहा !

कलश-१२८

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:-

(मालिनी)

निजमहिम-रतानां भेदविज्ञान-शक्त्या,
भवति नियत-मेषां शुद्ध-तत्त्वोपलम्भः ।
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरेस्थितानां,
भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥१२८॥

श्लोकार्थ : [भेदविज्ञानशक्त्या निजमहिमरतानां एषां] जो भेदविज्ञान की शक्ति

के द्वारा अपनी (स्वरूप की) महिमा में लीन रहते हैं, उन्हें [नियतम्] नियम से [शुद्धतत्त्वोपलम्भः] शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि [भवति] होती है; [तस्मिन् सति च] शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि होने पर, [अचलितम् अखिल-अन्यद्रव्य-दूरे-स्थितानां] अचलितरूप से समस्त अन्य द्रव्यों से दूर वर्तते हुवे ऐसे उनके, [अक्षयः कर्ममोक्षः भवति] अक्षय कर्ममोक्ष होता है (अर्थात् उनका कर्मों से ऐसा छुटकारा हो जाता है कि पुनः कभी कर्मबन्ध नहीं होता)॥१२८॥

श्लोक - १२८ पर प्रवचन

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:- १२८ (कलश)

निजमहिम-रतानां भेदविज्ञान-शक्त्या,
भवति नियत-मेषां शुद्ध-तत्त्वोपलम्भः ।
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरेस्थितानां,
भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः॥१२८॥

आहाहा! जो भेदविज्ञान की शक्ति के द्वारा.. अर्थात् क्या? दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का राग जो होता है, उस राग से भी भिन्न पड़कर। आहाहा! भेदविज्ञान की शक्ति के द्वारा.. ऐसा कहा न? या राग की शक्ति द्वारा? आहाहा! राग से भी भिन्न करके भेदज्ञान की शक्ति द्वारा। आहाहा! शुभराग की सहायता से या मदद से, (ऐसा नहीं कहा)। आहाहा! दिगम्बर मुनि के वचन कठोर हैं। एकदम पूर्णानन्द का नाथ है और रागादि सब चीजों तो कृत्रिम हैं। आहाहा! अकृत्रिम ऐसा भगवान शुद्ध दर्शन-ज्ञानमय हैं, उसका ध्यान कर, उसे ध्यान में ले। आहाहा! उसे लक्ष्य में ले। आहाहा! उसे ज्ञेय बना, उसे दृष्टा होकर दृश्य बना। आहाहा! पूर्ण स्वरूप, वह दृष्टा है, वह ज्ञान है। ऐसे ज्ञान और दर्शन पर्याय में बना। आहाहा!

[भेदविज्ञानशक्त्या निजमहिमरतानां] भेदविज्ञान की शक्ति के द्वारा अपनी (स्वरूप की) महिमा में लीन रहते हैं.. आहाहा! समकित्ती धर्म में लीन रहता है। राग से भिन्न पड़ा हुआ ज्ञान, उस ज्ञान में लीन रहता है। आहाहा! राग आवे परन्तु उसमें एकाग्र

नहीं होता, वैसे उसमें अपना स्वरूप है—ऐसा नहीं मानता। भेदविज्ञान के बल से। आहाहा! निज स्वरूप की महिमा में लीन रहता है। राग से ऐसे भेद किया परन्तु वापस निज स्वरूप में लीन रहता है, ऐसा। भेदज्ञान के बल से इच्छामात्र से भिन्न पड़कर और निज स्वरूप में लीन रहता है। आहाहा! समझ में आया? निज स्वरूप में लीन रहता है, ऐसा कहते हैं।

उन्हें नियम से [शुद्धतत्त्वोपलम्भः] शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि होती है;.. नियम से होती है, निश्चय से होती है। भेदविज्ञान की शक्ति से 'निजमहिमरतानां' अपने स्वरूप की महिमा में लीन। आहाहा! स्वरूप की महिमा में लीन (रहते हैं)। उन्हें नियम से (निश्चित)... शुद्ध तत्त्व का अनुभव अर्थात् शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति आती है, उन्हें शुद्ध तत्त्व प्राप्त होता है। आहाहा! शुद्ध तत्त्व का अनुभव होता है।

[तस्मिन् सति] शुद्ध तत्त्व की.. अनुभव होने पर। तस्मिन् होने पर। आत्मा का राग से भिन्न अनुभव होने पर। शुद्ध दर्शन-ज्ञानरूप का अनुभव होने पर। अचलितरूप से समस्त अन्य द्रव्यों से दूर.. आहाहा! चलायमान न हो, उस प्रकार से। समस्त अन्य द्रव्यों में सब आ गया। देव-गुरु-शास्त्र, मन्दिर, मूर्ति (सब आ गया)। राग तो कहीं रह गया। यह तो सब बाहर, बाहर।

समस्त अन्य द्रव्यों से दूर वर्तते हुवे ऐसे उनके,.. आहाहा! [अक्षयः कर्ममोक्षः भवति] आहाहा! अक्षय कर्ममोक्ष होता है.. अर्थात्? (अर्थात् उनका कर्मों से ऐसा छुटकारा हो जाता है कि पुनः कभी कर्मबन्ध नहीं होता)। आहाहा! देखो भाषा! इच्छा से और परद्रव्य से आत्मा को भिन्न करके, भिन्न आत्मा का जो अनुभव करे, उसमें स्थिर हो, उसमें जमावट हो तो उसे अल्प काल में मुक्ति होती है। ऐसा नहीं कहा कि ऐसा होकर बीच में गिर जाएगा, अमुक होगा। आहाहा! यह तो वीर का काम है। कायर का काम नहीं है। बचाव करना कि इससे होगा और इससे होगा... आहाहा!

अक्षय कर्ममोक्ष होता है (अर्थात् पुनः कभी कर्मबन्ध नहीं होता)। ऐसा मोक्ष होता है। कर्म का क्षय हुआ, सो हुआ। आहाहा! (ऐसा कर्म से छुटकारा हो जाता है) उन्हें फिर किसी प्रकार का कर्म नहीं रहता।

गाथा-१९०-१९२

केन क्रमेण सम्वरो भवतीति चेत् -

तेसिं हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरिसीहिं ।
मिच्छत्तं अण्णाणं अविरय-भावो य जोगो य ॥१९०॥
हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ।
आसव-भावेण विणा जायदि कम्मस्स वि णिरोहो ॥१९१॥
कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायदि णिरोहो ।
णोकम्म-णिरोहेण य संसार-णिरोहणं होदि ॥१९२॥

तेषां हेतवो भणिता अध्यवसानानि सर्वदर्शिभिः ।
मिथ्यात्व-मज्ञान-मविरत-भावश्च योगश्च ॥१९०॥
हेत्वभावे नियमाज्जायते ज्ञानिन आस्रव-निरोधः ।
आस्रवभावेन विना जायते कर्मणोऽपि निरोधः ॥१९१॥
कर्मणोऽभावेन च नोकर्मणामपि जायते निरोधः ।
नोकर्म-निरोधेन च सन्सार-निरोधनं भवति ॥१९२॥

सन्ति तावज्जीवस्य आत्मकर्मैकत्वाध्यासमूलानि मिथ्यात्वाज्ञानाविरतियोगलक्षणानि अध्यव-
सानानि । तानि रागद्वेषमोहलक्षणस्यास्रवभावस्य हेतवः । आस्रवभावः कर्महेतुः । कर्म नोकर्महेतुः ।
नोकर्म सन्सारहेतुः इति । ततो नित्यमेवायमात्मा आत्मकर्मणोरेकत्वाध्यासेन मिथ्यात्वाज्ञानाविरति-
योगमयमात्मानमध्यवस्यति । ततो रागद्वेषमोहरूपमास्रवभावं भावयति । ततः कर्म आस्रवति । ततो
नोकर्म भवति । ततः सन्सारः प्रभवति ।

यदा तु आत्मकर्मणोर्भेदविज्ञानेन शुद्धचैतन्यचमत्कारमात्रमात्मानं उपलभते तदा

मिथ्यात्वाज्ञाना-विरतियोगलक्षणानां अध्यवसानानां आस्रवभावहेतूनां भवत्यभावः। तदभावे रागद्वेषमोहरूपा-स्रवभावस्य भवत्यभावः। तदभावे भवति कर्माभावः। तदभावेऽपि भवति नोकर्माभावः। तदभावेऽपि भवति सन्साराभावः। इत्येष सम्बन्धक्रमः॥१९०-१९२॥

अब यह प्रश्न होता है कि संवर किस क्रम से होता है? उसका उत्तर कहते हैं:-

रागादि के हेतू कहे, सर्वज्ञ अध्यवसान को।

मिथ्यात्व अरु अज्ञान, अविरतभाव त्यों ही योग को॥१९०॥

कारण अभाव जरूर आस्रवरोध ज्ञानी को बने।

आस्रवभाव अभाव में, नहीं कर्म का आना बने॥१९१॥

है कर्म के जु अभाव से, नोकर्म का रोधन बने।

नोकर्म का रोधन हुवे, संसारसंरोधन बने॥१९२॥

गाथार्थ : [तेषां] उनके (पूर्व कथित रागद्वेषमोहरूप आस्रवों के) [हेतवः] हेतु [सर्वदर्शिभिः] सर्वदर्शियों ने [मिथ्यात्वम्] मिथ्यात्व, [अज्ञानम्] अज्ञान, [अविरतभावः] और अविरतभाव [योगः च] तथा योग-[अध्यवसानानि] यह (चार) अध्यवसान [भणिताः] कहे हैं। [ज्ञानिनः] ज्ञानियों के [हेत्वभावे] हेतुओं के अभाव में [नियमात्] नियम से [आस्रवनिरोधः] आस्रवों का निरोध [जायते] होता है, [आस्रवभावेन विना] आस्रवभाव के बिना [कर्मणः अपि] कर्म का भी [निरोधः] निरोध [जायते] होता है, [च] और [कर्मणः अभावेन] कर्म के अभाव से [नोकर्मणाम् अपि] नोकर्मों का भी [निरोधः] निरोध [जायते] होता है, [च] और [नोकर्मनिरोधेन] नोकर्म के निरोध से [संसारनिरोधनं] संसार का निरोध [भवति] होता है।

टीका : पहले तो जीव के, आत्मा और कर्म के एकत्व का अध्यास (अभिप्राय) जिनका मूल है ऐसे मिथ्यात्व-अज्ञान-अविरति-योगस्वरूप अध्यवसान विद्यमान हैं, वे रागद्वेषमोहस्वरूप आस्रवभाव के कारण हैं; आस्रवभाव कर्म का कारण है; कर्म नोकर्म का कारण है; और नोकर्म संसार का कारण है। इसलिए-सदा ही यह आत्मा, आत्मा और कर्म के एकत्व के अध्यास से मिथ्यात्व-अज्ञान-अविरति-योगमय आत्मा को मानता है (अर्थात् मिथ्यात्वादि अध्यवसान करता है); इसलिए रागद्वेषमोहरूप आस्रवभाव को भाता है, उससे कर्मास्रव होता है; उससे नोकर्म होता है; और उससे

संसार उत्पन्न होता है। किन्तु जब (वह आत्मा), आत्मा और कर्म के भेदविज्ञान के द्वारा शुद्ध चैतन्य चमत्कारमात्र आत्मा को उपलब्ध करता है—अनुभव करता है, तब मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति और योगस्वरूप अध्यवसान, जो कि आस्रवभाव के कारण हैं, उनका अभाव होता है; अध्यवसानों का अभाव होने पर रागद्वेषमोहरूप आस्रवभाव का अभाव होता है; आस्रवभाव का अभाव होने पर कर्म का अभाव होता है; कर्म का अभाव होने पर नोकर्म का अभाव होता है; और नोकर्म का अभाव होने पर संसार का अभाव होता है। इस प्रकार यह संवर का क्रम है।

भावार्थ : जीव के जब तक आत्मा और कर्म के एकत्व का आशय है—भेदविज्ञान नहीं है, तब तक मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति और योगस्वरूप अध्यवसान वर्तते हैं, अध्यवसान से रागद्वेषमोहरूप आस्रवभाव होता है, आस्रवभाव से कर्म बँधता है, कर्म से शरीरादि नोकर्म उत्पन्न होता है और नोकर्म से संसार है। परन्तु जब उसे आत्मा और कर्म का भेदविज्ञान होता है, तब शुद्धात्मा की उपलब्धि होने से मिथ्यात्वादि अध्यवसानों का अभाव होता है, और उससे रागद्वेषमोहरूप आस्रव का अभाव होता है, आस्रव के अभाव से कर्म नहीं बँधता, कर्म के अभाव से शरीरादि नोकर्म उत्पन्न नहीं होते और नोकर्म के अभाव से संसार का अभाव होता है।—इस प्रकार संवर का क्रम जानना चाहिए।

गाथा - १९०-१९२ पर प्रवचन

अब यह प्रश्न होता है कि संवर किस क्रम से होता है? पहले किस प्रकार से होता है, ऐसा था। अब उसका क्रम क्या? (ऐसा पूछता है)। पहला, पश्चात् क्रम भी है या नहीं उसे? यह पूछता है। पहले में तो संवर को प्राप्त करने की पद्धति क्या है? (ऐसा पूछा था)। इसमें कहते हैं कि संवर का क्रम क्या है? आहाहा! गाथा

तेसिं हेदू भणिदा अज्झवसाणाणि सव्वदरिसीहिं ।

मिच्छत्तं अण्णाणं अविरय-भावो य जोगो य ॥१९०॥

हेदुअभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोहो ।

आसव-भावेण विणा जायदि कम्मस्स वि णिरोहो ॥१९१॥

कम्मस्साभावेण य णोकम्माणं पि जायदि णिरोहो ।
णोकम्म-णिरोहेण य संसार-णिरोहणं होदि ॥१९२॥

लो, यह क्रम ।

रागादि के हेतू कहे, सर्वज्ञ अध्यवसान को।
मिथ्यात्व अरु अज्ञान, अविरतभाव त्यों ही योग को ॥१९०॥
कारण अभाव जरूर आस्रवरोध ज्ञानी को बने।
आस्रवभाव अभाव में, नहिं कर्म का आना बने ॥१९१॥
है कर्म के जु अभाव से, नोकर्म का रोधन बने।
नोकर्म का रोधन हुवे, संसारसंरोधन बने ॥१९२॥

क्रम आगे आयेगा ।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)